

# हमारे आदि पुरुष महर्षि भृगु



हमारे आदि पुरुष महर्षि भृगु, जिनकी संतान होने के कारण हमें “भार्गव” कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है, के अवतरण का समय सृष्टि की रचना के प्रारम्भ से ही जुड़ा हुआ है। जब इस आदि शक्ति परम ब्रह्म जत्रदाधार ने सृष्टि रचने का मन में विचार किया तब उन्होंने सर्वप्रथम अपने मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। मन से उत्पन्न होने के कारण इन सबका नाम ‘मनु’ पड़ा और ये सभी आदि पुरुष माने गये। हमारे कुल प्रवर्तक महर्षि भृगु भी इन्हीं मानस पुत्रों में से एक हैं। कुछ विद्वान इन्हें वरुण का पुत्र भी मानते हैं। इन्हीं भृगु जी के वंशज होने के कारण हम भार्गव कहलाते हैं।

“भृगोरुपत्यम् इति भार्गवम्”

महर्षि भृगु की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत हैं। कुछ विद्वानों द्वारा इन्हें अग्नि से उत्पन्न बताया गया है तो कुछ ने इन्हें ब्रह्मा की त्वचा एवं हृदय से उत्पन्न बताया है। कुछ विद्वान इनके पिता को वरुण बताते हैं कुछ कवि तथा मनु को इनका जनक मानते हैं। प्रमुखता शास्त्रों में इन्हें ब्रह्मा का मानस पुत्र ही माना जाता है। कुछ भी हो भृगु के प्रति प्राचीन पौराणिक पुरुष होने से इनकार नहीं किया जा सकता। भृगु शब्द संस्कृत के “भ्राज्” धातु से बना है। भ्राज् का अर्थ है “प्रकाशित होना” अतः भृगु का अर्थ है “प्रकाशमान” भृगु का अर्थ “पापों को नष्ट करने वाले” या “अग्नि” के जलने के रूप में भी किया गया है। महर्षि भृगु ने ब्रह्म विद्या वरुण से प्राप्त की। वरुण के उपदेश से इन्होंने कठोर तप किया और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया। ये ज्योतिष, आयुर्वेद, शिल्प विद्या, विज्ञान, दर्शन शास्त्र आदि विद्याओं के उच्च कोटि के ज्ञाता थे। इनके रचित कुछ ग्रन्थ हैं ‘भृगु स्मृति’ (आधुनिक मनुस्मृति ‘भृगु संहिता (ज्योतिष), ‘भृगु संहिता’ (शिल्प), ‘भृगु सूत्र’, ‘भृगु उपनिषद्’, ‘भृगु गीता’ आदि। भृगु एक महान् ज्योतिषी थे वे त्रिकालदर्शी थे तथा अपनी ज्योतिष विद्या के लिए वैदिक काल से ही प्रसिद्ध थे। अर्थ वे ज्योतिष की जातक पद्धति भृगुक्त बतायी जाती है। आपके द्वारा रचित एक विशाल ग्रंथ ‘भृगु संहिता’ आज भी उपलब्ध है जिसकी मूल प्रति नेपाल के पुस्तकालय में ताम्रपत्र पर सुरक्षित रखी है। इस विशाल कार्य ग्रंथ को कई बैलगाड़ियों पर लाद कर ले जाया गया था। भारतवर्ष में भी कई हस्तलिखित प्रतियां पंडितों के पास उपलब्ध हैं किन्तु वे अपूर्ण हैं। इसमें मनुष्यों की जितनी भी संभावित जन्म पत्रिया हो सकती हैं, उनमें प्रत्येक जन्मपत्री के तीन जन्म का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इस महान् ग्रंथ की सत्यता निर्विवाद मान्य है। श्री केएम मुंशी जैसे बड़े-बड़े विद्वान इस ग्रंथ का निरीक्षण एवं परीक्षण कर चुके हैं एवं इसको कसौटी पर खरा पाया। आज भी दुनियां के विद्वान इस अनोखे ग्रंथ को देख दातों तले उगली दबाते हैं। हमारे लिये यह एक अत्यंत गौरव की बात है। महर्षि भृगु अग्नि के उत्पादक थे समस्त संसार उनका ऋणी है। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने पृथ्वी पर अग्नि को प्रदीप्त किया था। ऋग्वेद में वर्णन है कि उन्होंने मातरिश्वन् से अग्नि ली और उसको पृथ्वी पर लाये। किन्तु आज के संदर्भ में इसका तात्पर्य यह भी निकलता है और समीचीन भी हो कि भृगु एक महान वैज्ञानिक थे जिन्होंने सर्वप्रथम पृथ्वी पर अग्नि को उत्पादित किया था। आज भी पारसी लोग महर्षि भृगु की अथर्वन् के रूप में पूजा करते हैं। भृगु का उल्लेख संजीवनी विद्या प्रवर्तक के रूप में भी प्राप्त होता है। उन्होंने संजीवनी-बूटी खोजी थी और मृत प्राणी को जिन्दा करने का उन्होंने ही उपाय खोजा था। परम्परागत यह विद्या उनके पुत्र शुक्राचार्य को प्राप्त हुई। इस संबंध में महाभारत एवं अनेक पुराणों में कथा उपलब्ध होती है। पद्यपुराण के अनुसार महर्षि भृगु ने लगभग 1000 वर्ष तक हिमालय के निकुंज में होम का धुंआ पीकर कठोर तपस्या के द्वारा भगवान शंकर की आराधना की थी जिससे उन्होंने प्रसन्न होकर यह विद्या भृगु को प्रदान की। “आराधितः सुतपसां हिमविक्रुज्जे, धूम्रव्रतेन मनसापि परैगम्यः। संजीवनी समददात् भृगवे

महात्मा।।” भृगु का उल्लेख एक महान् धर्मवेत्ता के रूप में भी पाते हैं। मानव धर्म निरूपण का प्रमुख ग्रंथ “मानवधर्म-शास्त्र” अथवा “मनुस्मृति” महर्षि भृगु द्वारा ही कही गई थी। अतः उसे “भृगु स्मृति” भी कहते हैं। इस संबंध में मनुस्मृति का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है। इति मानव धर्मशास्त्र भृगु प्रोक्तं पठन् द्विजः। भवत्याचार वात्रित्यं यथेष्टम्प्राप्त्याज्ञातिम्॥ महर्षि भृगु का आयुर्वेद से घनिष्ठ संबंध था। अथर्ववेद एवं आयुर्वेद संबंधी प्राचीन ग्रंथों में स्थल-स्थल पर इनको प्रामाणिक आचार्य की भांति उल्लिखित किया गया है। आयुर्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा का भी महत्व है। भृगु ऋषि ने सूर्य की किरणों द्वारा रोगों के उपशमन की चर्चा की है। वर्षा रूपी जल सूर्य की किरणों से प्रेरित होकर आता है। वह शल्य के समान पीड़ा देने वाले रोगों को दूर करने में समर्थ है। महर्षि भृगु की दो पत्नियां बताई गई हैं। पहली पत्नी का नाम पौलोमा था। यह असुरों के पुलोम वंश की कन्या थी। इसकी सगाई पहले अपने ही वंश के एक पुरुष से, जिसका नाम महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 13 के अनुसार दंस था, हुई थी। परन्तु उसके पिता ने यह संबंध छोड़ कर उसका विवाह महर्षि भृगु से कर दिया। जब महर्षि च्यवन उसके गर्भ में थे, तब महर्षि भृगु की अनुपस्थिति में, एक दिन अवसर पाकर दंस (पुलोमासर) उसको हर ले गया। शोक और दुख के कारण उसका गर्भपात हो गया और शिशु पृथ्वी पर गिर पड़ा इस कारण यह च्यवन (गिरा हुआ) कहलाया। कहा गया है कि सूर्य के समान दिव्य शिशु को गर्भ से च्युत देख कर असुर ने पुलोमा को छोड़ दिया, और स्वयं जलकर भस्म हो गया। तत्पश्चात् पुलोमा दुख से रोती हुई, शिशु को गोद में उठा कर आश्रम को लौटी। तब उसके अश्रुओं से एक नदी बह चली, जिसका नाम ब्रह्मना ने (जिसको वहां भृगु का पिता बताया गया है) “वधूसरा” रक्खा। महर्षि च्यवन ने अपना आश्रम इसी के तट पर बनाया था। दिव्या पौलोमा की संतान में एक और विख्यात ऋषि शुक्र या उशनस् काव्य हुए। यह असुरों के गुरु या पुरोहित थे। महाभारत तथा पुराणों में प्रयः उनको भृगु का पुत्र बताया गया है, परन्तु ऋग्वेद की अनुक्रमणिका से ज्ञात होता है वह भृगु के पौत्र और कवि ऋषि के सुपुत्र थे। महर्षि शुक्र के दो विवाह हुए थे। पहली स्त्री इन्द्र की पुत्री जयन्ती थी, जिसके गर्भ से देवयानी ने जन्म लिया था, देवयानी का विवाह चन्द्रवंशीय क्षत्रिय राजा ययाति से हुआ था। और उसके पुत्र यदु और मर्क तुर्वसु थे। दूसरी स्त्री का नाम गोधा था, जिसके गर्भ से त्वष्ट्र, वतुर्ण शंड और मक उत्पन्न हुए थे। पौलोमा के गर्भ से पांच और पुत्र बताये गये हैं। महर्षि भृगु की दूसरी स्त्री थी यज्ञ और दक्षिण की पुत्री ख्याति। उसके दो पुत्र हुए धाता और विधाता और एक पुत्री-लक्ष्मी। धाता के आयती नाम की स्त्री से प्राण, प्राण के धोतिमान और धोतिमान के वर्तमान नामक पुत्र हुए। विधाता के नीति नाम की स्त्री से मृकंड, मृकंड के मार्कण्डेय और उनसे वेद श्री नाम के पुत्र हुए। पुराणों में कहा गया है कि इनसे भृगु वंश बढ़ा। महर्षि भृगु के सम्बन्ध में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है- “महर्षिणाम् भृगुरहम्” भगवान् का यह महावाक्य भार्गव सभा के एम्बलेम में भी अंकित है। महाकवि ‘रसाल’ के शब्दों में- जिनकी ज्योति दीपति दिशान देश देशन में, दीपति दिवाकर सी दीखति ललाम है।। जाकी प्रभा जोतिस की जाहिर जहान मांहीं, जाको मुख ज्ञान सुख सुखमा को धाम है।। पावन सुपावन सों हैं जाके हैं अनूप अंक, अंकित, रमापति को अति अभिराम हैं।। सुन्दर सुकाम पुन्य पूरन प्रकाम नित, भाषत ‘रसाल’ ऐसे भृगु को प्रनाम है।। स्वर्ण पंण् दीनानाथ जी दिनेश ने इन शब्दों में उनका जयजयकार किया है- भृगु ऋषि के चरणों में सादर नमस्कार हो सौ-सौ बार। जिनकी परम कृपा से जग में हुआ भव्य भृगुकुल विस्तार।। भूमंडल में व्याप्त हो रही जिनकी पावन कीर्ति महान। जिन की विमल ‘भार्गवी विद्या’ करती जन मंगल कल्याण।। जिनकी गौरव गाथाओं में ओत प्रोत सात्विक तप त्याग। जो हैं जीवन प्राण हमारे हम सब हैं जिनकी संतान।। वेद विदित सुर असुर मानते जिनकी महिमा अपरम्पार। भृगु ऋषि के चरणों में सादर नमस्कार दो सौ-सौ बार।। हमें उनके वंशज होने का गौरव प्राप्त है- यह हमारा परम सौभाग्य है। – पूर्णचन्द्र भार्गव, जयपुर

## भार्गव वंश की गौरवमयी नारी सहजोबाई

सहजोबाई-यथा नाम तथा गुण जी हा, सहजोबाई वास्तव में भार्गव वंश की वह गौरवमयी नारी है जो अपने नाम के अनुरूप ही सहज होना चाहती थी और सहज रहकर ही उन्होंने भार्गव वंश को भी सहज रहने की प्रेरणा दी। दो बिन्दुओं के बीच सरल रेखा खींचना सबसे कठिन है, वक्र रेखा आसानी से खींची जा सकती है। सरल होना कठिन है, वक्रता सरल है। कोई महिला संत अपना नाम सहजोबाई रखे तो इसका भी एक गूढ़ अर्थ है- वह सहज होना चाहती है। सहज होने की विसंगति यह है जब हम प्रयत्न करते हैं, तो असहज हो जाते हैं और यदि प्रयत्न ना करें तो जो हैं (अर्थात् असहज) वही रह जाते हैं। फिर सहज कैसे हुआ जाये? अध्यात्म के क्षेत्र में ऐसी ही पहेलियां हैं। मोक्ष का अर्थ है कि कोई इच्छा ना रहे किन्तु “कोई इच्छा न रहे” यह भी तो एक इच्छा है, फिर इच्छा से कैसे छूटा जाये? इसी को हल करने के लिए संत सहजोबाई ने बताया कि सहज होने का मार्ग है हम कुछ करके भी न करने वाले बने रहें और इसके तीन मार्ग हैं- ज्ञान, प्रेम और समर्पण। इन्हीं के माध्यम से किस प्रकार सहजोबाई गौरवमयी नारी के रूप में भार्गव वंश में प्रसिद्ध हुई इस लेख के द्वारा मैं स्पष्ट करना चाहूंगी। ज्यों-त्यों राम नाम हि तारै। ज्यों-त्यों राम नाम हि तारै। जान अजान अग्नि जो छूवै, वह जारै पै जारै।।॥ उलटा सुलटा बीज गिरै ज्यों, धरती माहीं कैसे। उपजि रहै

निहचै करि जानौ, हरि सुमिरन है ऐसे॥२॥ वेद पुरानन में मथि काढ़ा, राम नाम तत सारा। तीन कांड में अधिका जानौ, पाप जलाबनहारा॥३॥ हिरदा सुद्ध करै बुद्धि निरमल, ऊचां पदवी देवै। चरनदास कहै सहजोबाई व्याधा सब हरि लेवे॥४॥ सुश्री सहजोबाई का जन्म दूसर भार्गव कुल में विष्णु सम्वत् 1782 को श्रावण शुक्ल पंचमी रविवार 25 जुलाई 1725 ई. को दिल्ली के परीक्षित पुरे नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता हरिप्रसाद व माता अनूपी देवी थी। आप अपने चारों भाइयों से सबसे छोटी थीं। प्रचलित प्रथा के अनुसार लगभग 11 वर्ष की अल्पायु में ही सुश्री सहजोबाई का सम्बन्ध दिल्ली के भार्गव परिवार में तय कर दिया गया। जबकि वह विवाह कर गृहस्थी बसाना नहीं चाहती थीं। विवाह के अवसर पर वर एवं कन्या को आशीर्वाद देने चरणदास जी को भी आमंत्रित किया गया था। दुल्हन के रूप में सजी संवरी सहजोबाई को देखते ही त्रिकालदर्शी संत चरणदास ने कहा:- सहजो तनिक सुहाग पर कहा गुदाये शीश। मरना है रहना नहीं, जाना विश्वे बी॥ इनके वचन सुनते ही सहजोबाई श्रृंगार उतारते हुए बोली मैं विवाह नहीं करूंगी। ना तो संत जी की भविष्यवाणी, और ना ही ईश्वर की इच्छा व होनी को कोई टाल सका। आतिशबाजी के कारण बारात में घोड़ी के बिदक जाने और पेड़ से टकराने के कारण वर की घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई। इस दुःखद घटना एवं संत के वचन सुनकर सहजोबाई उनके माता-पिता और चारों भाई उनके शिष्य हो गये। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्त देवता यानि कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का निवास होता है। हमारे प्राचीन ऋषि, मुनियों का नारी के प्रति ऐसा उदार दृष्टिकोण रहा है। अठारहवीं सदी में संत महापुरुषों ने नारी को पूर्ण आदर और सम्मान दिया। पुरुष के समान ही नारी को ज्ञान योग एवं भक्ति के योग्य बताया और दीक्षित कर उन्होंने ना केवल अपनी शिष्या बनाया अपितु गद्दी का उत्तराधिकारी भी बनाया। अठारहवीं सदी के प्रमुख संत श्री चरणदास जी ने स्त्रियों को अपने संप्रदाय में समान स्थान दिया। उनकी शिष्याओं में सहजोबाई प्रथम शिष्या थीं जिन्होंने ज्ञान एवं योग जैसी कठिन साधना पर अधिकार किया एवं प्रथम बार योग के क्षेत्र में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर उसे आगे बढ़ाया। इन्होंने अन्य स्त्रियों को भी योग विधा में पारंगत किया। सुश्री सहजोबाई का एक मात्र ग्रन्थ 'सहज प्रकाश' है जिसमें गुरु महिमा, गुरु की विशिष्टता, गुरु विमुख होने से कष्ट प्राप्ति साधु महिमा का अंग, प्रेम अंग, अजपा गायत्री का अंग, पूर्व जन्म से लेकर मरणासन्न अवस्था का वर्णन, निर्गुण संशय निरूपण अंग आदि सबका सरल भाषा में वर्णन किया गया है, पर उन्होंने इसका सारा श्रेय अपने गुरु को ही दिया है। उन्होंने हरि से श्रेष्ठ गुरु को माना और राम को त्यागने को तत्पर रहीं- "राम तंजू पै गुरु न बिसारूं, गुरु के सम हरि कू न निहारूं हरि ने जन्म दियो जग माहीं, गुरु ने आवागमन छुटाहीं॥ इनका मानना था कि राम तो एक दूर की धारणा है। कौन जाने, हों या ना हों? किसी ने उन्हें देखा नहीं छुआ नहीं, महसूस नहीं किया वह निराकार हैं। उन्हें छोड़ सकते हैं, परन्तु गुरु आकार में साक्षात् है जिन्हें देखा, सुना छुआ जा सकता है। वह हमारे जीवन का सेतु है। वह यथार्थ है। चरणदास जी उनके परमेश्वर थे, गुरु थे उन्होंने उन्हीं से हर रूप में अथाह प्रेम किया वह गुरु में हरि का रूप भी देखती हैं वह प्रेम में परमात्मा को देखती हैं। क्योंकि प्रेम के ऊपर कुछ नहीं। कवियित्री और साधिका सहजोबाई के जीवन काल में ही उनके साहित्य का प्रचार प्रसार देश के विभिन्न क्षेत्रों दिल्ली, राजस्थान, बुन्देलखण्ड और बिहार में हो चुका था। उनकी मृत्यु के बाद भक्तों के हृदय में 'सहज प्रकाश' और सहजो के भक्ति रस से सराबोर पदों के प्रति अभिरुची बनी रही। इस कथन का प्रमाण है देश के विभिन्न क्षेत्रों में तैयार की गई 'सहज प्रकाश' की हस्त लिखित प्रतियाँ 1920 में सहज प्रकाश ग्रन्थ का विवरण प्रस्तुत किया। 1931 ई. में अंग्रेजी भाषा में इनके ग्रन्थ प्रस्तुत हुए इससे विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ। आपकी रचनाएं साधना प्रधान है। 'ज्ञान योग' साधिका सहजोबाई का एक मात्र विशिष्ट ग्रन्थ हैं। नामकरण कवियित्री के नाम पर ही है। 'सहज प्रकाश' ग्रन्थ के अन्त में इनके द्वारा रचित पदों को संकलित किया गया व 'शब्द' नाम रखा गया? इसमें गुण जन्म बधाई, गुरु महिमा कृष्ण चरित्र, ज्ञान महिमा आदि उल्लेखनीय हैं। सहजोबाई अपने कोकिल कण्ठ से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अमर होकर रह गई। अपनी वाणी से भारत को भक्ति का सन्देश दिया। इनके ग्रन्थ स्वयं गंगा जी के समान हैं। हम बिना प्रशंसा किए नहीं रह सकते। सहजो भजि हरि नाम को, तजो जगत से नेहु। अपना तो कोई नहीं अपनी सगी न देहु। अचरज जीवन जगत में, मरना निश्चय जान। सहजो अवसर जात है, हरि सौ करि पहचान। भीतर का भीतर खुले, के बाहर खुल जाय। देह खेह हो जायगी, जैही जन्म गवाय। सहजोबाई के व्यक्तित्व के कारण ही नारी को मिन्दर के संचालन आदि का कार्य करने का अधिकार प्राप्त हुआ अन्यथा पुरुष वर्ग ही मिन्दर का प्रधान होता रहा। संत साहित्य में सहजोबाई का साहित्य अपनी गुरुता रखता है। अतः यह कहना समीचीन है कि सहजोबाई ने संत होते हुए भी निष्काम प्रेमभक्ति का सफल प्रतिपादन किया है। अंत में 24 जनवरी 1805 को सहजोबाई ने वृन्दावन में देह त्याग दी। राजस्थान की मीरा एवं दिल्ली की सहजोबाई वास्तव में योग साधिका एवं कवियित्री के रूप में भार्गव वंश की गौरवमयी नारी है। - श्रीमती मृदुला भार्गव

## हमारे पूज्य बाबा चरणदास जी महाराज



भार्गव वंश में महर्षि भृगु से स्वामी शंकराचार्य जी तक धर्म के प्रचार और प्रसार की जो परम्परा रही है, वह अठारवी सदी में एक महान सन्त के जन्म से एक बार पुनः जागृति हो उठी थी। यह सन्त और कोई नहीं हमारे पूज्य बाबा चरणदास जी ही थे। शंकराचार्य और चरणदास जी के समय में लगभग 900 वर्षों का अन्तर होने पर भी बहुत कुछ एक सा है। शंकराचार्य जी भारतीय सभ्यता के ह्रास के प्रथम चरण में तथा चरणदास जी अन्तिम चरण में हुए थे। इस ह्रास के युग में अकबर, जहागीर और शाहजहाँ के राज्यकाल मरुभूमि में नखलिस्तान के समान थे। परन्तु औरंगजेब ने अपनी हिन्दू दमन नीति के अनुसार अपने पूर्वजों के किये हुये काम को मिट्टी में मिला दिया। औरंगजेब के अन्याय का सामना, हिन्दुओं की रक्षा के लिए-छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह तथा स्वामी चरणदास जी ने जन्म लिया। भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट माननीय हेमचन्द्रजी के पहले ही अनेकों दूसरे परिवार ढोसी से निकल कर आसपास के क्षेत्र, रिवाड़ी नारनौल, कानौड़, बहरोड़, अलवर, माछेरी, डेहरा आदि स्थानों में बस चुके थे। इन्हीं परिवारों में एक परिवार अलवर जिले के डेहरा ग्राम में बसा हुआ था- जिसके प्रमुख शोभनदास, राजा हेमू के पिता श्री पूरनमल जी के समान धर्मात्मा थे। श्री कृष्ण भक्ति में तल्लीन शोभनदास जी को एक बार स्वप्न में श्री कृष्ण ने दर्शन देकर वर मांगने को कहा- शोभनदास ने यही वर मांगा कि उनके कुल में सदा भक्ति की ज्योति प्रज्वलित रहे भगवान ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उनकी आठवीं पीढ़ी में अंशावतार के रूप में स्वयं प्रकट होने का आश्वासन प्रदान किया। शोभनदास जी की छठी पीढ़ी में प्रयागदास हुए जिनकी पत्नी का नाम यशोदा देवी था, उन्हीं प्रयागदास के पुत्र मुरलीधर थे जिनकी पत्नी का नाम कुंजो देवी था। इन्हीं महान दम्पति के यहां महात्मा चरण दास जी ने भाद्रपद शुक्ल तृतीया संवत् 1760 सन् 1703ई.को जन्म लिया। माता-पिता ने इनका नाम रणजीत रखा था। श्री रणजीत में बाल्यकाल से ही ईश्वर चिन्तन के गुण विद्यमान थे- वे सत्संग एवं साधुसन्तों में रमे रहते थे। एक बार जब वे 5 वर्ष के थे- उन्हें एक साधु ने गोद में उठाकर पेड़े खिलाए और उनके महान सन्त होने की भविष्यवाणी की थी। सात साल की आयु में रणजीत के पिताजी का स्वर्गवास हो गया था- उसके कुछ समय उपरान्त उनके दादा/दादी का भी स्वर्गवास हो गया। इस विपत्ति का सामना करने हेतु कुंजो देवी ने अपने पिता दिल्ली निवासी भिखारीदास जी के यहां जाने का निर्णय लिया रास्ते में कोट कासिम में रणजीत की दादीबुआ रामा देवी ने उन्हें अपने पास रख लिया परन्तु उनके नाना ने उन्हें भी दिल्ली बुलाया। शिक्षा-दीक्षा का प्रयत्न किया, परन्तु प्रारम्भिक कुछ शिक्षा लेने के बाद, ईश्वर भजन तथा ईश्वर में रमे रहने के कारण वह शिक्षा नहीं पा सके। उनकी माता ने उनका विवाह भी करवाना चाहा परन्तु उन भक्त ने साफ मना कर दिया। रणजीत के नाना, धार्मिक प्रवृत्ति के थे। उनके यहां सदा भागवत पाठ हुआ करता था जिसे रणजीत ध्यान से सुना करते थे। परिणाम स्वरूप वह एक योग्य गुरु की तलाश में घर से निकल पड़े। घूमते घामते दो वर्ष बाद सितम्बर 1721 में वह मुजफ्फर नगर शुक्रताल नामक स्थान पर जा पहुंचे, जहाँ ध्यान करते समय उन्हें शुकदेव मुनि के दर्शन हुए-उन्हीं को रणजीत ने अपना गुरु मानकर अपना नाम चरणदास रख लिया- शुकदेव जी को गुरुमान कर वह दिल्ली लौट आए। 14 वर्षों के योग में सिद्धी प्राप्त करके चरणदास श्री कृष्ण की बाललीला भूमि बृन्दावन पधारे वहां भगवान की आराधना में दो वर्ष बाद योगी राज चरणदास 35 वर्ष की आयु में दिल्ली लौटे तथा 44 वर्ष की आयु तक अपनी सशक्त वाणी से असंख्य लोगों का भला करते रहे। धर्म तथा समाज दोनों ही क्षेत्रों में फैले अन्धविश्वास एवं ऊच नीच के भेदभाव को दूर किया। सन्त चरणदास जी का व्यक्तित्व इतना चमत्कारिक था कि उस समय के अनेक शासक भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रहे। जयपुर राज घराने पर तो उनका गहरा प्रभाव था- जयपुर के महाराजा सवाई ईश्वर सिंह, माधोसिंह, पृथ्वी सिंह और प्रताप सिंह, चरण दास जी के विशेष कृपा पात्र थे। एक किवदन्ती के अनुसार चरणदास जी ने नादिरशाह के आक्रमण की भविष्यवाणी कई माह पूर्व में ही कर दी थी। उनकी भविष्यवाणी सत्य होने पर मुगल बादशाह मोहम्मद शाह इतना प्रभावित हुआ कि अपनी बेगमों सहित एवं दरबारियों सहित उनके आश्रम में आने लगा। तथा जागीर और मुहरें भी भेंट करनी चाही-परन्तु सन्त चरणदास जी ने लेने से मना कर दिया। उनके 108 प्रमुख शिष्यों में से कुछ ने भिन्न भिन्न प्रदेशों में जाकर भक्ति का प्रचार किया। उसके

फलस्वरूप उनके निर्वाण के बाद उनके शिष्यों का एक सम्प्रदाय बन गया- जिसका नाम चरणदासी चरण दासी अथवा उनके गुरु शुकदेव जी के नाम पर शुक सम्प्रदाय घोषित हुआ। सन्त चरणदास जी आध्यात्मिक एवं सन्त के अलावा कवि भी थे। उनकी लगभग बीस रचनायें हैं। जिसमें से दस चिन्तन प्रधान है तथा दस वर्णन प्रधान हैं। स्वामी चरणदास जी योगी ही नहीं सुधारक भी थे। धर्म/समाज के क्षेत्र में फैले हुए, अन्ध विश्वासों, आडम्बरों और संकीर्णताओं को दूर करने का उनके द्वारा सतत प्रयत्न हुआ। कबीर और नानक के समान वे भी एकेश्वरवादी थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है:- सब जग भर्म भुलावा ऐसे। ऊट की पूंछ से ऊट बध्यों ज्यों, भेड़चाल है जैसे।। दूध बूरा पाक्षर सो भाणें, जाके मुख नहीं नासा। लप्सी पपड़ी ढेर करत हैं, वह नहीं खावे ग्रासा।। वाके आगे बकरा मारें, ताहि न हत्या जाने। लै लोहू माथे सो लम्वें, ऐसे मूढ़ अदाने।। कहै कि हमरै बाताव ज्यावें, बड़ी आयुबल दीजे। उनके आगे बिनती करवे, अंसुअन हिरदद भीजें।। भोयें भरडे के पग लागे, साधु सन्त की निन्दा। चेतन को तजि पाहन पूजे, ऐसा यह जग अन्धा।। सत संगत की ओर न झाँके, भक्ति करत सकुचाने। चरणदास, शुकदेव कहत हैं, क्यो न नरक को जावे।। जहा; चरणदास जी ने धर्म क्षेत्र के अनगढ़ पत्थरों भूत, प्रेतों और भैरों, शीतला आदि निम्न कोटि के देवी देवताओं की पूजा के स्थान पर हरि भक्ति का उपदेश दिया, वहीं समाज के क्षेत्र में लिंग और जाति के आधार पर भेदभाव भी समाप्त किया। जहा कबीर जैसे सन्त भी नारी को हेयदृष्टि से देखते थे, वहीं चरणदास जी ने समाज में ही नहीं धर्म क्षेत्र में भी नारी को पुरुष बराबर ला बिठाया था। उनकी शिष्य मण्डली में सबसे प्रमुख दो महान महिलाएँ थी- जिनका नाम था- 'सहजोबाई' एवं दयाबाई। यह दोनों ही दूसरी जाति की थी- सहजो बाई एक उच्चकोटि की हरिभक्त थीं और उन्हें अठारवी शताब्दी की मीरा बाई कहा जाता था। उनका जन्म सन् 1725 ई. में दिल्ली में हुआ था- उनके पिता श्री हरि प्रसाद एवं माता श्रीमती अनूपी बाई थीं, जो चरणदास जी की बुआ थी। कहा जाता है कि उनकी शादी के अवसर पर बारात में घोड़े पर बैठे वर की घोड़ा भड़क जाने से मृत्यु हो गयी थी- सहजोबाई ने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने की प्रतिज्ञा कर चरणदास जी की शिष्य बनकर रहना स्वीकार किया था- अपनी अपूर्व साधना के फलस्वरूप वे योग में उत्तीर्ण हो गई थीं। 1734 ई. में उन्होंने 'सहज प्रकाश' नामक एक ग्रन्थ की रचना की जो भक्ति साहित्य का उच्चतम ग्रन्थ हैं। उनकी विद्वता अनुसार उनके दोहे इस प्रकार हैं। (1) सहजोभज हरिनाम को, तजो जगत से नेह। अपना तो कोई नहीं, अपनी सगी न देह।। (2) अचरज जीवन जगत में मरना निश्चय जान। सहजो अवसर जात है, हरि सो कर पहिचान।। सहजोबाई सन 1805 के जनवरी माह में 90 वर्ष की आयु में ब्रह्मलीन हुई थीं।। चरण दास की दूसरी भक्त शिष्या थी- "दयाबाई"। वह सहजोबाई की चचेरी बहन थी और उनका जन्म डेहरा में हुआ था। सहजोबाई की भाँति उन्होंने भी ब्रह्मचर्य अपनाकर चरणदास जी का शिष्यत्व स्वीकार किया था तथा वे भी सहजोबाई की भाँति कवियित्री थीं। उनका निर्वाण सन् 1773 में हुआ था। इस प्रकार इन तीन भार्गव (दूसर) विभूतियों ने हिन्दू समाज को सन्मार्ग दिखाने का सराहनीय कार्य किया एवं भृगुवंश को गौरव प्रदान किया था- इति शुभम् सूक्ष्म रूप से स्वामी चरण दास जी द्वारा धर्म एवं समाज की सेवा में जो किया गया वह निम्न शब्दों में प्रेषित करता हूँ :- राजस्थान अलवर में, डेहरा नामक ग्राम एक सिद्ध, तपस्वी, बाबा का करता हूँ बयान जी- संवत 1760 जन्म लिया भाद्रपद शुक्ल तीज को माता कुज्जो के लाल भए, प्राणों के प्राण जी, भार्गव वंश के विभूषण भए- सन्त चरणदास बाल्यपन में ज्ञान वैराग्य, अष्टौग योग पूर्ण किये। सच्चे भये योगी नानक, कबीर, तुलसी समान जी तुलसी के समान भए, कम नहीं मीरा से, जातिवाद, भेद भाव, पास नहीं, ऊँची थी शानजी। ऋद्धि, सिद्धि, लिपटे थी रात दिन चरणों में एतिहासिक यह बात है, विश्वास करना श्रीमान जी, ईरान के शासक नादिरशाह की बात करें, 1739 ई. की घटना का करिएगा ध्यान जी, दिल्ली में कल्लेआम करना जब विचारा था, छह माह पूर्व ही सन्त जी ने लीना पहिचान जी, लीना पहिचान चरणदास बाबा ने। ज्ञानी गुणवान बड़े सिद्धि का बाना था। लौ लागी चरणन से यों चरण दास बाबा की, मथुरा और गोकुल क्या वृन्दावन छाना था। भक्त की भक्ती से बस में भगवान हुए वंशी की मधुरतान, गऊओं को चराना था जय दर्श दिए कृष्णचन्द्र, चरणदास बाबा को भक्त की भक्तीवश पड़ा श्री कृष्ण को आना था। - जय शंकर भार्गव 'जय' इन्दोर

## अन्तिम हिन्दू सम्राट हेमचन्द्र विक्रमादित्य





भारतीय इतिहास में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं, जहाँ एक सामान्य व्यक्ति अपनी आत्मिक निष्ठा, कर्तव्यपरायणता, मानवीय सहिष्णुता, अपूर्व साहस और अद्भुत पराक्रम के बल पर देश के सर्वोच्च सिंहासन तक जा पहुँचे और अपने असाधारण गुणों के बल पर इतिहास का अमिट हस्ताक्षर बन जाए। भार्गव कुल को गौरवमंडित करने वाले हेमचन्द्र विक्रमादित्य या हेमू एक ऐसे ही विलक्षण प्रतिभावान अप्रतिम पुरुष थे, जिनकी जीवन-गाथा युग-युगों तक हमारे समाज के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत बनी रहेगी। हेमू का जन्म किसी राजघराने में नहीं हुआ था। न ही वे किसी अत्यन्त ऐश्वर्यशाली परिवार के अंग थे। राजस्थान में राजगढ़ के निकट माछेरी ग्राम में विजयादशमी, सन् 1501 को उनका जन्म हुआ था। पिता राय पूरन दास एक संत प्रकृति के पुरुष थे और अपने सदाचरण के लिए सभी धर्मों के लोगों द्वारा समादृत थे। राय पूरन दास जीवन यापन के लिए छोटा-मोटा व्यापार करते थे। उन दिनों रिवाड़ी एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था और दिल्ली तथा आगरा जैसे सत्ता केन्द्रों से दूर होने के कारण अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण क्षेत्र था। व्यापार के अधिक अच्छे अवसरों की संभावना के कारण हेमू के पिता राय पूरनमल माछेरी से रिवाड़ी आकर बस गए। उस समय हेमू की उम्र 22-23 वर्ष की थी। हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त अरबी और फ़ारसी भाषा उन्हें बहुत अच्छी आती थी। उन दिनों अफ़ग़ानिस्तान के पठानों के साथ हमारे सम्बन्ध बहुत मधुर थे और पठान अपनी धार्मिक सहिष्णुता, ईमानदारी और साहस के कारण अत्यन्त लोकप्रिय थे। शेरशाह सूरी, जिसने सबसे पहले समूचे भारत में सड़कों का जाल बिछाकर उसे एक सूत्र में बांधने का काम किया था, अत्यन्त योग्य शासक था। उसका जन्म नारनौल में हुआ था, जो रिवाड़ी के अत्यन्त निकट है। इतिहास में ऐसे स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि शेरशाह सूरी और राय पूरनमल के परिवारों के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ थे। शेरशाह सूरी भी अत्यन्त दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और अत्यन्त पराक्रमी था। इसी काल में मुग़लों के आक्रमण शुरू हो गए थे। पानीपत की पहली लड़ाई में इब्राहिम लोधी और बाबर के बीच युद्ध में जिस तत्व ने निर्णायक भूमिका अदा की थी, वह एक नयी ईजाद थी। इस नयी ईजाद 'बारूद' को बनाने वाले तत्व शोरा की सामरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शेरशाह सूरी ने हेमू को अनुबन्धित किया। शेरशाह सूरी के अभ्युत्थान के साथ-साथ हेमू भी सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। इसी बारूद के सहारे शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को अनेक बार पराजित करके भारत की सीमा के पार खदेड़ा था और अपने विशाल साम्राज्य को सुदृढ़ किया था। शेरशाह सूरी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इस्लामशाह (सलीम खा) गद्दी पर बैठा, लेकिन इतने बड़े साम्राज्य को संभालना उसके लिए कठिन हो गया। स्थान-स्थान पर अनेक अफ़ग़ान सरदारों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस्लाम शाह को एक ऐसे विश्वास-पात्र की तलाश थी, जो वीर भी हो और विश्वसनीय भी। उसकी निगाह हेमू पर पड़ी और उसने अपने कठिन समय में हेमू को दरोगा-ए-डाक चौकी के अत्यन्त महत्वपूर्ण पद पर आसीन कर दिया। यह पद गुप्तचर विभाग के प्रमुख का था, जिस पर हेमू ने अत्यन्त कुशलता, योग्यता, वीरता और कूटनीति का परिचय देते हुए इस्लामशाह के सभी शत्रुओं का एक-एक कर सफ़ाया कर दिया। इस कार्य में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस्लाम शाह के सभी प्रमुख पदाधिकारी और सैन्य अधिकारी पठान थे। उनके बीच हेमू अकेले हिन्दू थे। उन पठान विद्रोहियों को कुचल कर भी हेमू पठानों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय हो गए। उनकी वफ़ादारी और अदम्य साहस से प्रभावित होकर इस्लाम शाह ने उन्हें अमीर का खिताब दिया और छह हज़ार घुड़सवारों की मुख्तयारी अदा की। इस्लाम शाह सूरी की मृत्यु के बाद जब आदिल शाह गद्दी पर बैठा तो उसके विरुद्ध भी विद्रोह के झंडे खड़ा करने वाले अफ़ग़ान सरदारों की कमी नहीं थी। आदिल शाह के वज़ीर-ए-आज़म की हैसियत से हेमू ने सिंध से लेकर बंगाल तक अनेक युद्ध करके आदिल शाह के साम्राज्य को निष्कटक बना दिया। हेमू जैसा योग्य, ईमानदार और बहादुर वज़ीर-ए-आज़म पाकर आदिल शाह सल्तनत के काम काज से पूरी तरह बेफ़िक्र हो गया और ग्वालियर जाकर ऐय्याशी और मौजमस्ती में डूब गया। जब हेमू आदिलशाह के शत्रुओं से बंगाल में जूझ रहा था तभी हुमायूँ ने हमला कर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया। यह समाचार मिलने के साथ ही हेमू ने युद्ध की ज़ोरदार तैयारी की। ग्वालियर से वह आगरा की तरफ़ बढ़ा और जनवरी 1556 में हुमायूँ की मृत्यु हो गई।

बैराम खाँ के निर्देश में मुग़ल सेना आगरा में हेमू से हार गई और फिर हेमू ने दिल्ली की ओर कूच किया। दिल्ली की बागडोर उस समय तर्दी बेग के हाथों में थी। हेमू की सेना ने तुगलकाबाद में पड़ाव डाला और 7 अक्टूबर 1556 को हेमू के नेतृत्व में अफ़ग़ान सेना और मुग़ल सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में हेमू के नेतृत्व में आदिलशाह के सभी सेनाधिकारी, चालीस हज़ार घुड़सवार, एक हज़ार हाथी, इक्यावन बड़ी तोपों और पाच सौ छोटी तोपों के साथ असंख्य सैनिकों का लश्कर था। हेमू की अद्भुत यौद्धिक क्षमता, कुशल नेतृत्व और विलक्षण साहस के सन्मुख मुग़ल सेना नहीं टिक सकी और उसके पाव उखड़ गए। इस युद्ध में हेमू की सेना को दुश्मन के 160 हाथी, 1000 अरबी घोड़े, और भारी मात्रा में सोना तथा अन्य बहुमूल्य सामग्री हाथ लगी। यह हेमू का 22 वा युद्ध था। इससे पूर्व सभी युद्धों में हेमू को भारी सफलता मिली थी। लेकिन इस सफलता को देखकर बड़े से बड़े सैनिक अधिकारियों से लेकर सामान्य जन भी उसकी प्रशंसा करने लगे। इस युद्ध की विजय के बाद दिल्ली में विशाल स्तर पर विजयोत्सव मनाया गया, जिसमें अफ़ग़ान और हिन्दू सरदारों को भारी इनाम और इकरामात दिए गए। ग़रीबों और ज़रूरतमन्द लोगों को खुले हाथों बकशीश बांटी गई। चारों ओर उसकी जय-जयकार होने लगी। दूसरी ओर बैरामखाँ अपनी भारी पराजय का बदला लेने की तैयारियों में जुटा था। आदिल शाह इन सबसे बेख़बर सुरा और सुन्दरी के नशे में आकंठ डूबा हुआ था। अफ़ग़ान सेनाधिकारी भी जानते थे कि मुग़ल सेना से किए गए इस युद्ध में आदिल शाह की क़तई कोई भूमिका नहीं थी। वे सभी एकमत से हेमू के नेतृत्व में संगठित रूप से राजकाज चलाने के लिए तैयार थे। युद्ध की संभावित चुनौतियों का सामना करने के लिए हेमू जैसे नायक की उपस्थिति अपरिहार्य थी। इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए अफ़ग़ान सेना के सभी अमीरों, सेनाधिपतियों, सामन्तों, उमरावों और वज़ीरों ने यही उचित समझा कि हेमू को दिल्ली के राजसिंहासन पर पदासीन किया जाए। सबकी सहमति से 10 अक्टूबर 1556 को हेमू ने दिल्ली का राजसिंहासन संभाला और हिन्दू सम्राट के रूप में विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की। इतिहास साक्षी है कि इस विजय उत्सव में कोई खून ख़राबा नहीं हुआ और वज़ीरों और सामन्तों से लेकर सामान्य प्रजा-जन तक इस उत्सव के भागीदार थे। इसके बाद पानीपत की दूसरी लड़ाई के बारे में इतिहास बहुत मुखर है, क्योंकि इस युद्ध में हेमू की दायीं आख में तीर लगा जो उसके सिर के आर-पार हो गया। उसने रूमाल से तीर को निकाला लेकिन बेहद खून बह जाने से वह बेहोश हो गया और अपने हाथी के हौदे में गिर गया। अपने सेना नायक की अनुपस्थिति में हेमू की सेना में विभ्रम की स्थिति पैदा हो गई और एक जीती हुई लड़ाई देखते-देखते हार में बदल गई। प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार बी.ए.स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अकबर द ग्रेट मुग़ल' में लिखा है :- "उसने (हेमू ने) शुक्लपक्ष के मध्य में खान ज़भन के नेतृत्व में लड़ने वाले सैनिकों को अपने पहाड़ सरीखे हाथियों के द्वारा घेर कर अपनी विजय का निर्णायक क्षण लगभग प्राप्त कर लिया था। संभवतः उसकी विजय हो जाती लेकिन दुर्घटनावश तभी उसकी आख में एक तीर लगा जो उसके सिर के आर-पार हो गया और वह चेतना शून्य हो गया।" दूसरे प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार सर वॉल्स्ले हेग ने ज़ोर देकर कहा : "मुग़ल सेना निश्चयतः रौंद दी गई होती, यदि हेमू की आख में तीर न लगा होता।" अस्तु! अपने जीवन के तेईसवें युद्ध में हेमू की पराजय हुई और वह एकमात्र पराजय उसके जीवन का अन्तिम चरण बन गई। एक तीर, अन्जाने हाथों के एक तीर ने सम्पूर्ण देश के इतिहास की इबारत को बदल दिया। चन्द्रगुप्त, अशोक, हर्ष, विक्रमादित्य की परम्परा को पुनर्स्थापित करने का संकल्प अधूरा रह गया। अन्तिम हिन्दू सम्राट हेमचन्द्र विक्रमादित्य के विलक्षण व्यक्तित्व और प्रखर तेजस्विता से सारा देश परिचित होकर भी अपरिचित रह गया। यह गौर करने की बात है कि केवल एक माह से भी कम समय तक पूरे देश का शासन चलाने वाले उस महान पुरुष ने हमारे देश और समाज को क्या क्या दिया है! अपने अल्प शासन काल में हेमू ने जिस धार्मिक सौहाद्र और सहिष्णुता का सूत्र-पात किया, वह उसकी दूरदृष्टि का परिचायक है। हमारे देश की राजनीति में सर्वधर्म समभाव या धर्म निरपेक्षता की मूल भावना या सैद्धान्तिक अवधारणा का सूत्र-पात अकबर ने नहीं, हेमचन्द्र विक्रमादित्य ने किया था। यह निस्सन्देह सच है कि अकबर ने बैराम खा के शिकंजे से अपने आप को मुक्त करने के बाद उसी भावना को परिपुष्ट किया और अन्ततः अकबर महान कहलाया। हेमू का इससे भी बड़ा योगदान एक और भी है। देश के भारी से भारी संकट के समय युद्ध और शान्ति के दो अनन्य छोरों के बीच सन्तुलन बनाए रखना। इतिहास में संभवतः ऐसा कोई प्रमाण अन्य कहीं नहीं मिलता जबकि किसी देश के शासक ने युद्ध की विभीषिकाओं से निरन्तर जूझते हुए भी सामान्य जन के कष्टों और दुःखों को दूर करने के मानवीय प्रयास किए हों। 1555-56 में दिल्ली और आगरा में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था। युद्ध की भीषण तैयारियों के बीच जन सामान्य के हितों की रक्षा के लिए उसने अजमेर, अलवर और सरहिन्द से अनाज मंगवाया और गरीबों तथा ज़रूरतमन्द लोगों को मुफ्त बंटवाया। इस तरह जन कल्याण राज्य (सोशल वेलफ़ेयर स्टेट) के संकल्प की नींव रखने वाला पहला शासक भी हेमू ही था, जिसकी निगाह में सामान्य जन का स्थान बहुत ऊंचा था और उसके मन में पराई पीर को जानने, समझने और उसे मिटाने की अनन्य क्षमता और इच्छा थी।

# ऋषिवर च्यवन और सुकन्या



श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार महाभाग भृगुजी ने अपनी भार्या ख्याति से धाता और विधाता नामक दो पुत्र तथा श्री नाम की एक कन्या उत्पन्न की। आदिपर्व अध्याय 60 में दी हुई वंशावली के अनुसार भृगु के दो और पुत्र कवि और च्यवन बताये गये हैं। च्यवन महर्षि भृगु की पुलोमा नामक स्त्री से उत्पन्न हुये थे। उन्हीं महामहिमामय च्यवन से ही भार्गव वंश का विकास माना जाता है। हम सब च्यवनवंशीय भार्गव हैं। च्यवन ऋषि ने ढोसी पर्वत पर बहुत काल तक तपस्या की, अतः उनके वंशज दूसर ब्राह्मण कहलाये। इन्हीं च्यवन और सुकन्या की कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है, जिसका वर्णन मैं प्रस्तुत कर रही हूँ। ईसा के लगभग 3000 वर्ष पूर्व मनु वैवस्वत हुए। मनु के पुत्र राजा शर्याति वेदों के निष्ठावान विद्वान और प्रतापी वीर थे। उनकी एक कमलनयनी सुंदरी कन्या थी, जिसका नाम सुकन्या था। वह बड़ी शील-गुणवती थी। एक बार शर्याति अपनी पुत्री को साथ लेकर उस वन में भ्रमण करते हुए पहुँचे, जिसमें ऋषिवर च्यवन का आश्रम अवस्थित था। अपनी सखियों के साथ सुकन्या वन में यत्र-तत्र विचरने लगी। वृक्षों और पुष्पों की बहार उसको लुभा रही थी। अकस्मात् एक स्थान पर उसने एक बाँबी से जुगनुओं की भाँति चमकते हुए दो छिद्र देखे। वह कुतूहल से भर उठी। लड़कपन के वंश में होने के कारण, उसने उन छिद्रों में कांटा भोंक दिया। कांटा लगते ही छिद्रों में से रुधिर बह निकला। सुकन्या और उसकी सखिया भय से पीली पड़ गई, और कापती हुई अपने डेरे पर भाग गई। तत्क्षण ही राजा के साथ आए हुए सैनिकों और कर्मचारियों का बुरा हाल हो गया, उनका मल-मूत्र बन्द हो गया। इस अनहोनी घटना पर राजा शर्याति को बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु बुद्धिमान होने के कारण उनको कारण और निदान सूझ गये। वह बोले, 'अरे! तुम लोगों ने भार्गव च्यवन के प्रति कोई दुर्व्यवहार तो नहीं किया है? मुझे तो स्पष्ट मालूम पड़ता है कि हममें से किसी के द्वारा यह अनर्थ अवश्य हुआ है।' तब सुकन्या ने डरते-डरते पिता से कहा। 'द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्ठकेन वै' मुझसे अनजाने में अपराध अवश्य हुआ है। मैंने दो ज्योतिषियों को काटे से छेद दिया है।' अपनी प्रिय पुत्री की बात सुनकर राजा शर्याति घबरा गये। वह तुरंत सुकन्या को साथ लेकर ऋषिवर के पास आए। उनकी स्तुति की और हाथ जोड़कर तथा पैरों पड़कर क्षमा माँगी। च्यवन ऋषि बहुत वर्षों से जप करते-करते बाबी में छिप गये थे, स्तुति से वह प्रसन्न हुए। तब उनको जराग्रस्त एवं असहाय जानकर राजा ने उन्हें अपनी कन्या को ही सेवार्थ अर्पण करने का प्रस्ताव किया। ऋषिवर ने अनुग्रह करके सुकन्या को भार्या के रूप में अंगीकार किया। उसी क्षण राजा की सेना का कष्ट दूर हो गया। बार-बार क्षमा माग और अनुमति ले राजा अपनी राजधानी को लौट गए। च्यवन ऋषि बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। सुकन्या का उन्हीं से पाला पड़ा था और वह भी घोर अपराध करने के बाद। वह निष्ठावान पत्नी की भाँति उनकी तन-मन से सेवा करने लगी। ऋषि की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति में वह हरदम तत्पर रहने लगी। अंत में अपनी निःस्वार्थ सेवा से सुकन्या ने ऋषिवर को प्रसन्न कर ही लिया। कुछ दिन सुख से बीतने के पश्चात् एक दिन च्यवन के आश्रम में अश्विनीकुमार आए। च्यवन ऋषि ने उनसे कहा, 'आप स्वर्ग के वैद्यराज हैं, और सब कुछ करने में समर्थ हैं। मुझे आप युवावस्था और इतना सुन्दर रूप दें कि सभी स्त्रियाँ मोहित हो जाय। तब मैं भी आपका उपकार करूँगा। इन्द्रदेव ने यज्ञों में जो आपका भाग रोक दिया है, वह मैं आपको दिलवा दूँगा। यह बात सुनकर अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये, उन्हें मनोवांछित वरदान मिल रहा था। उसी समय उन्होंने एक सिद्ध सरोवर प्रकट करके कहा, 'मुनिवर। यह सिद्धों द्वारा निर्मित सरोवर है। आप इसमें गोता लगाइये।' च्यवन वृद्धावस्था के कारण, अतीव जर्जर हो गये थे। उनकी नसें उभर आई थीं, और समस्त शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई थीं। निर्बलता के कारण वह स्वयं सरोवर में प्रवेश करने में असमर्थ थे। अश्विनीकुमार ने उन्हें पकड़कर अपने साथ स्नान कराया। स्नान करने के उपरान्त, उस यौवन-प्रदायक सरोवर से तीन अपूर्व सुन्दर युवक निकले। सूर्य के समान तीनों का तेज था, तीनों का रूप एक समान था। उसके दिव्याभरण एवं आभूषण भी एक समान थे। यह देखकर सुकन्या चकित रह गई। वह उस त्रिमूर्ति में अपने पति को पहचान न सकी। असमंजस में पड़कर और पातिव्रत्य धर्म के नष्ट होने की



संभावना से घबराकर, उसने अश्विनीकुमार की स्तुति की। उसके पातिव्रत्य से प्रसन्न और प्रभावित होकर अश्विनीकुमार ने च्यवन ऋषि की ओर इंगित कर दिया, और ऋषिवर से अनुमति लेकर स्वयं बैकुंठ चले गए। सुकन्या ने हर्षतिरेक से युवक च्यवन के चरणों पर सिर रख दिया, ऋषिवर ने उसे गले लगा लिया। कुछ वर्ष बीतने के पश्चात् राजा शर्याति को यज्ञ करने की इच्छा हुई, और वह यज्ञ का न्योता देने च्यवन ऋषि के आश्रम में पधारे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े दुःख और आश्चर्य से देखा कि उनकी पुत्री सुकन्या एक युवा की प्रेम और निष्ठा से सेवा कर रही है। युवा सूर्य के समान तेजस्वी है। सुकन्या ने पिता को प्रणाम किया, परन्तु उन्होंने मारे क्रोध के उत्तर नहीं दिया। वह सुकन्या को लक्षित करके बोले- चिकीर्षितं ते किमिदम् पतिस्त्वया प्रलिम्बतो लोकनमस्कृतो मुनिः। यत् एवं जरायग्रस्तमसत्यसम्मतं बिहाय जारं भजसे-मुमध्वगम्॥ कथं मतिस्ते-वगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम्। बिभिर्ष जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः॥ 'दुष्टे! तूने यह क्या किया? क्या तूने सर्ववन्दनीय च्यवन ऋषि को धोखा दे दिया? अवश्य ही तूने उनको बूढ़ा और बेकार समझ कर त्याग दिया है, और तू इस तरह राह चलते जार पुरुष की सेवा कर रही है। अपने इस आचरण से तू अपने ऊँचे जन्म को नीचे गिरा रही है। तुझमें यह कुबुद्धि कैसे उत्पन्न हुई? तेरा यह आचरण कुल में कलंक लगाने वाला है, और तू निर्लज्ज होकर अन्य पुरुष की सेवा कर रही है। इस प्रकार तू अपने पिता और पति दोनों के वंशों को घोर नरक में ले जा रही है।' पिता के ये कठोर और कटु वचन सुनकर सुकन्या मन-ही-मन मुस्कराई। वह समझ गई कि पिता को च्यवन के काया-कल्प की कथा ज्ञात नहीं है। उसने सविनय राजा से कहा, 'यह तो आपके दामाद च्यवन ऋषि हैं।' फिर उसने अश्विनीकुमार के द्वारा काया-कल्प की कथा वर्णन की। राजा शर्याति यह सुनकर अतीव प्रसन्न हुए, और उन्होंने हर्ष से पुत्री को गले लगा लिया। वह बड़े आदर और प्रेम से च्यवन ऋषि और सुकन्या को अपनी राजधानी ले आए। यज्ञ आरंभ हुआ। उसमें च्यवन ऋषि को ही आचार्य बनाया गया। च्यवन ने अपनी प्रतिज्ञानुसार, अपने मनोबल से, अश्विनीकुमार को भी यज्ञ का भाग दिया। अपनी इस प्रकार अवज्ञा होते देख, इन्द्र को बड़ा आक्रोश हुआ। यह भी यज्ञ को विध्वंस करने के लिए आ उपस्थित हुए। उपस्थित समाज चकित हो तप के प्रभाव को देखने लगा। क्रोध से अभिभूत हो उन्होंने च्यवन को मारने के लिए अपना वज्र उठाया, परन्तु च्यवन ने अपने प्रभाव से एक हुंकार के द्वारा वज्र सहित उठे इन्द्र के हाथ को अधर में ही रोक दिया। इन्द्र निश्चल होकर खड़े रह गए। देवताओं ने पूर्व काल में अश्विनीकुमार को, वैद्य होने के कारण, देव-समाज से अलग कर दिया था। इन्द्र की आज्ञा से उनको सोमरस का पात्र यज्ञ में नहीं दिया जाता था। अब उन्होंने च्यवन ऋषि के तपोबल से भयभीत होकर भविष्य में अश्विनीकुमार का यज्ञ में भाग देना स्वीकार कर लिया। च्यवन ऋषि की देवराज इन्द्र पर यह पूर्ण विजय थी। ऐसे थे हमारे महान् पूर्वज ! महर्षि च्यवन के स्मृति चिन्ह महर्षि च्यवन और सुकन्या की कथा से हमें एक बात ज्ञात होती है, कि उस काल में ब्राह्मण युवक और क्षत्रिय कन्याओं से विवाह हो जाया करता था, ऐसे विवाह अन्य भार्गवों ने भी किये थे। दूसरी बात यह मालूम पड़ती है कि ऋषियों का तपोबल पाशविक अथवा सैनिक बल पर हावी हो जाता था। हमारे महान् पूर्वजों ने गहन वनों में वर्षों तपस्या करके इतना आत्म-बल प्राप्त कर लिया था कि देवताओं को भी उनसे पराजित होना पड़ता था। च्यवन ऋषि के ढोसी पर्वत पर तपस्या करने के प्रमाण मिलते हैं। जयपुर 'स्मारिका' में श्रीमती सत्यवती के एक लेख से पता चलता है कि इंदौर से लगभग 50 मील दूर बड़वाहा के जंगल में भी च्यवन ऋषि ने वर्षों तप किया है। दोनों स्थानों की दूरी अधिक है, फिर भी कल्पनातीत नहीं है। उस काल में आनर्त प्रदेश अथवा आधुनिक गुजरात से लेकर संपूर्ण उत्तरी भारत में आर्यों का निवास हो गया था। श्रीमती सत्यवती ने लिखा है : 'बड़वाहा के पास एक मनोरम वनस्थली है, जिसे 'मोदरी' कहते हैं। यहाँ पर एक बावड़ी है, और समीप ही एक शिवालय बना हुआ है। यहाँ पर यह बात पुरातनकाल से चली आ रही है कि इस शिवालय के स्थान पर एक कुटी थी, जिसमें महर्षि च्यवन निवास और तपस्या किया करते थे। अनेक वर्ष व्यतीत हो जाने पर पूज्य च्यवन ऋषि की स्मृति को अमर बनाने के लिए उसी कुटी के स्थान पर पक्का शिवाला बना दिया गया है। उनके समय के जीर्ण-शीर्ण चिन्ह आज भी प्राप्त होते हैं।' इंदौर में बहुत से बंधु निवास करते हैं। उनके लिए वांछनीय होगा कि वे उक्त मंदिर अथवा शिवालय का पता लगाकर उसका जीर्णोद्धार करवायें। महर्षि च्यवन की इस पावन स्मृति को संरक्षण प्रदान करना भार्गव सभा का कर्तव्य है। महर्षि च्यवन के औषधियों द्वारा जराग्रस्त शरीर को यौवन प्राप्त करने की कथा भी सत्य है। आधुनिक काल में भी डाक्टर इस काया-कल्प को करते हैं। महामना मालवीय और सेठ हुकुमचन्द ने भी इसका प्रयोग करवाया था, यद्यपि सफलता नहीं मिली, कुछ लोगों को आंशिक लाभ भी हुआ है। प्रतीत होता है कि 'च्यवनप्राश' का आविष्कार स्वयं च्यवन ऋषि अथवा अश्विनीकुमार ने किया हो। आज भी इस औषधि के प्रभाव से मनुष्य में ओज और स्फूर्ति आ जाती है। ऋषिवर जमदग्नि का जन्म एक बार महर्षि ऋचीक से उसकी पत्नी और सास दोनों ने ही पुत्र-प्राप्ति के लिये कामना की। महर्षि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और दोनों के लिये अलग-अलग मंत्रों से चरु को पकाया। पत्नी सत्यवती की माँ ने यह समझकर कि महर्षि ने अपनी पत्नी के लिये श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे उसका चरु माग लिया। सत्यवती ने अपना चरु माता को दिया, और स्वयं उसका चरु खा गयी। जब महर्षि को यह पता चला, तो उन्होंने कहा, 'तुमने महान् अनर्थ कर डाला। घोरो दंड धरा पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः' अर्थात् तुम्हारा पुत्र तो लोगों को दंड देने वाला होगा परन्तु भाई ब्रह्म को जानने वाला एक श्रेष्ठ पुरुष होगा। सत्यवती को बड़ा पश्चाताप हुआ उसने मुनिवर से क्षमा माँगी और प्रार्थना की, स्वामी ऐसा नहीं होना चाहिए।' तब ऋषिवर ने प्रसन्न होकर कहा, 'अच्छी बात

है। पुत्र के बदले तुम्हारा पौत्र वैसा घोर प्रकृति का होगा।' समय पर सत्यवती की कोख से जमदग्नि का जन्म हुआ। सत्यवती समस्त लोगों को पवित्र करने वाली कौशिकी नदी बन गईं। जमदग्नि ने रेणु ऋषि की पुत्री रेणुका से विवाह किया, जिससे परशुराम उत्पन्न हुए। – शीला भार्गव, एम.ए. (पूर्वार्द्ध)